**International Journal of Research in Social Sciences**
Vol. 8 Issue 3, March - 2018
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

# वराहपुराणकालीन समाज की आर्थिक स्थिति का वर्त्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

**डॉ॰ रूपेश कुमार**
**पी॰–एच॰डी॰, संस्कृत**

वर्त्तमान समय के अनुरूप ही वराहपुराण कालीन आर्थिक व्यवस्था के मुख्यतः दो पहलू थे – ग्रामीण जीवन तथा नागरिक जीवन। तत्कालीन अधिकांश जनता गाँवों में रहती थी क्योंकि भारत पहले से ही कृषि प्रधान देश रहा है। वैदिक साहित्य में भी स्थान–स्थान पर गाँवों का उल्लेख पाया जाता है। वराह पुराण में तो गाँव के गाँव ब्राह्मणों को दान में दिये जाते थे। प्रत्येक गाँव में अनेक गृह होते थे, जिनमें उनका मुखिया कुलप या गृहपति कहलाता था। ये सब गाँव के मुखिया ग्रामणी के अधीन रहते थे। गाँवों की मुख्य सम्पदा खेत और गायें थी। गाँव की गायें बाँधने के लिए गोत्र या गोष्ठ रहते थे, जहाँ वन्य पशुओं अथवा चारों से उसकी रक्षा की जाती थी। कभी–कभी गायें घर के अहाते में भी रखी जाती थी, क्योंकि घर में बालकों व बछडों के खेल–कूद करने का उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। गाँवों के आसपास खेत रहते थे, जो भिन्न परिवारों के वैयक्तिक अधिकार के थे। खेतों के ध्यानपूर्वक नापा जाता था और प्रत्येक खेत का देवता रहता था, जो क्षेत्रस्य पतिः कहलाता था। कृषक अपने–अपने खेत जोतने के पूर्व क्षेत्रपति की पूजा किया करते थे।

आधुनिक समय में गाँव की अवधारणा वराहपुराण कालीन आर्थिक विकास की कसौटी के समीपता का अहसास कराता है। उस समय कृषि, पशुपालन एवं लघु उद्योग धन्धों का सम्बन्ध मुख्यतः गाँव से था, जहाँ पर उनका विकास किया जाता था। वाणिज्य, वैदेशिक व्यापार, बड़े–बड़े उद्योग धन्धों आदि का सम्बन्ध नगरों से था, जो सुसंस्कृत समाज की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के केन्द्र थे। वराहपुराणकालीन आर्थिक व्यवस्था का मुख्य केन्द्र बिन्दु कृषि, पशुपालन और वाणिज्य–व्यापार रहा है। कौटिल्य ने पशुपालन, कृषि और व्यापार के लिए वार्ता शब्द का प्रयोग किया है और ये तीनों को उन्हानें व्यवसाय बताये है। मनु के अनुसार कृषि वैश्यों का प्रमुख व्यवसाय और पशुपालन गौन था। महाभारत और रामायण में भी कृषि और पशुपालन दोनों महत्वपूर्ण व्यवसाय प्रतीक होते है। कालीदास ने भी राष्ट्रीय आर्थिक विकास में कृषि और पशुपालन की महत्ता को अंकित किया है। मंदक के अनुसार जो व्यक्ति वार्ता अर्थात पशुपालन, कृषि और व्यापार में निपुण होते थे वे कभी निर्धन नहीं हो सकते। शुक्र ने वार्ता के अन्तर्गत साहुकार, कृषि व्यापार और पशुपालन सम्मिलित किया है। इस तरह शतपथ ब्रह्मण के विदैधमाधव के प्रकरण के अनुसार वन को जलाकर जो कृषि योग्य भूमि बनाने की परम्परा शुरु हुई, वह वराह पुराण कालीन कृषि व्यवस्था की विकास की निरन्तरता में मील का पत्थर साबित हुआ है। इसी तरह ऋग्वैदिक आर्यों का पशुपालन व्यवसाय अपनी विकास की गति को बरकरार रखते हुए वराह पुराण कालीन आर्थिक दशा में चार चाँद लगाने का कार्य किया है। तत्कालीन समाज के पशुपालन के प्रति उत्साह उसके समायोजन की बौद्धिकता में प्रतीत होती है। पशुपालन कि लिए चारागाह, गौशाला, पुण्यकर्म के रूप में पशुदान इस शैली की उत्कृष्ठता को चिन्हत करता है। इस प्रवृति की उत्कृष्ठता में वराह पुराण कालीन पशु अहिंसक वैष्णव समाज की चिन्तन धारा

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 8 Issue 3, March - 2018
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

महत्वपूर्ण रही है, जो आधुनिक समाज की चिन्तन धारा के समीप है। ऋग्वेद कालीन वस्तु विनियम के द्वारा व्यापार प्रारम्भ करने की परम्परा वराह पुराण कालीन व्यापार वाणिज्य पद्धति के विकासात्मक स्वरूप में दृष्टिगोचर होता है, जो समय के गति में मुद्रा का विकासात्मक स्वरूप प्राप्त किया।

**कृषि** :– प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था का मूलाधार कृषि है, जिसकी निरंतरता में भारतीय जीवन अपना अस्थित्व बनाए हुए हैं। प्राच्य से अद्य तक आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है। भूमि से सम्पत्ति उत्पन्न करने का सबसे प्राचीन एवं सरल तरीका कृषि रहा है। भारत की भौगोलिक परिस्थिति के कारण यहाँ पहले से ही कृषि कर्म सम्पत्ति के उत्पादन का मुख्य साधन भी रहा है। वराह पुराण में खेत एवं उससे सम्बंधित वस्तुओं से उल्लेख प्राप्त होता है। कृष्ट एवं अकृष्ट भूमि के लिए विभिन्न शब्द प्रयोग में लाये गये हैं, जैसे– ऊर्वरा, क्षेत्र, आदि। ऊर्वरा भूमि को बराबर नपे हुए खेतों में बाँट दिया जाता था। प्रत्येक परिवार के पास बहुत से खेत रहते थे। वराह पुराण में वैश्य का कार्य कृषि यानि खेती करना निर्धारित है। तत्कालीन समय में यह स्पष्ट रूप से दिखता है कि उस समय का कृषक अत्यधिक साधन सम्पन्न था। कृषिकार्य में लगने वाले पशुधन की उपलब्धता अत्यधिक थी। कृषक तकनीक का विकास काफी उत्कृष्ट शैली में दिखता है। आधुनिक युग के मशीनी ट्रक्टर में जहॉ आठ से बारह फाड़ के हल चलते है वहीं पर तत्कालीन समय के कृषि कर्म में लगने वाले हल आठ जोड़े बैलों से चलता था। अर्थात् कृषि तकनीक का इस किस्म का विकास जहॉ पर एक साथ कई फाड़ के हल चलते होगे या फिर भूमि की उर्वरता का अधिकतम दोहन हेतु इतना लम्बा फाड़ का उपयोग करना जिसको एक जोड़े बैलों को खींचना शायद असम्भव होगा, इसलिए आठ जोड़े बैलों का उपयोग कर तत्कालीन कृषक भूमि को गहराई तक जोत कर भूमि की उर्वरता का अधिकतम उपयोग करते थे।

खेती से सम्बंधित उपर्युक्त उल्लेख यद्यपि वराह पुराण में यत्र–तत्र प्राप्त होते है, तथापि तत्कालीन युग में कृषि कर्म आजीविका का मुख्य साधन था। यद्यपि मुख्य रूप से कृषिकार्य वैश्यों की वृत्ति थी, तथापि इसकी आवश्यकता एवं धन उपलब्ध करने का मुख्य साधन होने के कारण यह काफी लोकप्रिय हो गया और कृषि की आकृष्टता में वर्णव्यवस्था की सभी दीवारों को तोड़ते हुए क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय बल्कि अत्यधिक मजदूरों की आवश्यकता ने शूद्रों को भी कृषक के कतार में ला खड़ा कर दिया। वराह पुराण कालीन समकालीन साहित्यों का साक्ष्य उपर वर्णित है जिसमें कृषि की आवश्यकता, लोकप्रियता, नवीन तकनीकी विकास इत्यादि के कारण ब्राह्मण को ग्राम, भूमि तक दान देने का साक्ष्य उपलब्ध होता है। इस समय ऋग्वैदिक काल से चला आ रहा पशुधन दान करने की परम्परा विस्तार लेते हुए अब कृषिभूमि तक आ गई। इस अवधारण में वराह पुराणकालीन कृषि के सकारात्मक विकास की चिंतनधारा में स्पष्ट दिखती है। सभी वर्णों में इसे अपनाया जाने लगा था।

इतना ही नहीं फसलों की उपलब्धता एवं उसके विभिन्न किस्मों का विकास भी वराहपुराण काल में स्पष्ट रूप से दिखता है। अब बीजों की उन्नत किस्में प्राप्त होने लगी, जो जलवायु के अनुसार उपजाना ज्यादा आसान था। यहाँ वराहपुराण कालीन फसलों के विकास क्रम को देखने के लिए अन्य साहित्यिक साक्ष्यों की उपलब्धता को चिन्हित करने का प्रयास करेंगे, जिसकी निरंतरता में फसलों की उन्नत

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 8 Issue 3, March - 2018
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

किस्में प्राप्त हो चुकी थी। वराहपुराणकालीन कृषि–व्यवस्था मुख्यतः वर्षा पर ही आधारित रहती थी, फिर भी मानव–निमृत, राजतंत्र से निमृत, स्थानीय प्रशासन से निमृत एवम् प्राकृतिक प्रदत्त सिंचाई के साधन भी इस काल में उपलब्ध थे लेकिन रहट का अविष्कार बहुत गहराई से भी जल निकालने का आसान साधन बना। परन्तु कृषि के लिए जल की जो आवश्यकता थी वह कुछ खास प्रदेशों तक ही सीमित थी इसलिए वराह पुराण में सिंचाई की व्यवस्था का उल्लेख अत्यल्प मिलता है। लेकिन तत्कालीन साहित्यों एवं अन्य साक्ष्यों पर ध्यानाकृष्ट करें तो सिंचाई प्रबन्धन का विस्तृत श्रृंखला प्राप्त होता है, जहाँ कृषक स्वयं से यह साधनों को जुटा रहा था साथ ही राजशासन के और से भी प्रजासेवा में उपलब्ध करवाया जा रहा था उसकी सुरक्षा हेतु विधि बनाई जा रही थी एवं दण्ड का विधान भी किया जा रहा था।

**पशुपालन** :– तत्कालीन समाज से अद्ययावधि तक दूसरा प्रमुख व्यवसाय पशुपालन था। वैश्यों के लिए पशुपालन भी आजीविका का साधन बताया गया है, साधारणतया लोग दुग्ध के लिए ही पशुपालन करते थे। इसलिए गाय को धन माना जाता था। इस धन का उपयोग वे अपनी आजीविका के लिए करते थे। दान देते हुए अन्य वर्णों के लोग इसे खरीदते थे। वराहपुराण में गोदान के ढेर सारे उदाहरण प्राप्त होते हैं। प्राचीन भारत में पशुओं की रक्षा पर इतना बल देने के दो कारण थे। एक तो अहिंसा का सिद्धांत था जिसके कारण यह विश्वास था कि समस्त पशु पक्षी ईश्वर की सृष्टि है और दूसरा पशुओं का आर्थिक दृष्टि से महत्व। कृषिकार्य में लगने वाले पशुधन की अत्यधिकता देखकर यह लगता है कि कृषि अपने विकास के दौर में उन्नतम सफर तय कर रहा था जहॉ पर वनों की सफाई कर प्रयाप्त भूमि कृषिकर्म हेतु उपलब्ध कर ली गई थी और पशुओं को चारा उपलब्धता हेतु वनों का घनापन समाप्त कर हिंसक पशुओं से अपने पालतु पशुओं के लिए सुरक्षित चारागाह वनवाया, तभी तो एक–एक कृषक के पास सेकड़ों की संख्या में हल की उपलब्धता दृष्टिगोचर होता है। इससे स्पष्ट होता है कि कृषक कर्म में लगने वाले संसाधनों की उपलब्धता की कमी नही थीं। भूमि, पशुधन और मानव श्रम की उपलब्धता को वराह पुराण कालीन मानव ने सम्यक् उपयोग कर आर्थिक रूप से अत्यधिक सम्पन्नता प्राप्त की। इसी कारण गौ, सांड, बैल, घोड़ा, हाथियों आदि की सुरक्षा के लिए अनेक धार्मिक कृत्य किये जाते थे। वराहमिहिर ने लिखा है कि भारत में पशुओं की दशा बहुत अच्छी थी परन्तु दुर्भिक्षों और महामारियों के समय बड़ी संख्या में पशु मर जाते थे। इस काल के कुछ पुराणों में भी लिखा है कि कलयुग में यज्ञ के लिए भी हिंसा करना आवश्यक नहीं है। यह अवधारणा आधुनिक समय की चिन्तन धारा को रेखांकित करता है।

**व्यापार और वाणिज्य** :– मानव में सहकारिता की भावना एक सहज प्रवृत्ति है। वराह पुराण काल में कुछ गाँव के समुहों के बीच में प्रत्येक सप्ताह पखवारे के बाद किसी एक गाँव में हाट लगता था, जिसमें गाँव की उत्पादित वस्तुओं का विनिमय या विक्री होती थी। आवश्यकता से अधिक जितनी वस्तुएं होती थीं, उन्हें व्यापारी खरीदकर दूर के उन स्थानों को ले जाते थे जहां उनकी मांग होती थी। जो दूर के स्थानों से लाई गई वस्तुएं होती थीं वे भी इन्हीं हाटों में बेची जाती थीं। इस समय दोनों प्रकार के व्यापारी थे बड़े और छोटे। संभवतः छोटे व्यापारी स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे और प्रधान व्यापारी वहाँ से वस्तु खरीदकर लाते थे,

**International Journal of Research in Social Sciences**
Vol. 8 Issue 3, March - 2018
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

जहाँ उनका उत्पादन होता था और छोटे व्यापारियों को बेचे जाते थे। ये बड़े व्यापारी माल ढोने के लिए बैलगाड़ी, मजदूर, नावें, जहाज किराये पर लेते थे। मृच्छकटिक में ऐसे व्यापारी युवक का उल्लेख है जो अपना माल लेकर कई विदेशों में गया था और जिसने बहुत धन कमा लिया था। व्यापारी दूर देशों में जाकर व्यापार किया करते थे। ये लोग दल (काफिला) बना कर व्यापारिक–यात्रा किया करते थे। वराह पुराण में कहा गया है कि वणिकों ने व्यापारियों का एक दल एकत्रित कर पूर्व मण्डल की ओर चला और उत्तरापथ एवं विदेश जाने वाली सामग्री एकत्र कर अनेक क्रय–विक्रय योग्य वस्तुओं को खरीद कर उसने अत्यधिक लाभ–हानि के द्वारा बहुत स्वर्ण पैदा किया। उत्तर के देश से विस्तृत व्यापार द्वारा बहुमूल्य श्रेष्ठ घोड़े, मणियाँ, रत्नों एवं उत्तम वस्त्रों का व्यापार करना तत्कालीन आर्यों की आजीविका के साधन थे। व्यापारियों के दलों को दस्यवों से लूटे जाने का भय भी बना रहता था। रास्ते में वन डाकू रहते थे। इस प्रकार के काफिले के नेता को 'सार्थवाह' कहा जाता था। कालिदास के वर्णन से हमें ज्ञात होता है कि सरकार स्थल मार्गों और जलमार्गों पर व्यापारियों की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध करती थी। परन्तु इसमें कुछ अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। सड़कों पर स्थल के डाकू और जलमार्गों पर जलके डाकू व्यापारियों को लूट लेते थे। इसीलिए अधिकतर व्यापारी काफिलों में चलते थे। वे एक सार्थवाह को अपने साथ लेते थे। जंगलों में व्यापारियों को सार्थवाह साथ होते हुए भी डाकू लूट लेते थे।

उद्योगों और व्यवसायों की अनेक श्रेणियों का उल्लेख वराह पुराण समकालीन साहित्यों में मिलता है। रघुवंशम् में वास्तुकारों की एक श्रेणी का और मुद्रा राक्षस में जौहरियों की एक श्रेणी का स्पष्ट उल्लेख है। वराहमिहिर ने भी कृषि, व्यापार और अनेक व्यवसायों की श्रेणियों एवं उनके अध्यक्षों का उल्लेख किया है। अभिलेखों में तेलियों और रेशम बुनने वालों की8 श्रेणियों का स्पष्ट रूप से उल्लेख है। पहाड़पुर अभिलेख और दामोदरपुर ताम्रलेख संख्या 1,2,4 में नगर श्रेष्ठी का उल्लेख है। सम्भवतः नगर के व्यपारियों की श्रेणी का अध्यक्ष नगर श्रेष्ठी कहलाता था। बसाढ़ में अनेक मिट्टी की मोहरें मिलती है जिनसे इस काल की श्रेणियों के संगठन पर प्रर्याप्त प्रकाश पड़ता है इनमें श्रेणी–सार्थवा–कुलिक–निगम, श्रेष्ठि कुलिक–निगम, श्रेष्ठि–निगम, कुलिक–निगम और प्रथम कुलिक का उल्लेख है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस समय साधारण व्यापारियों, दूर–दूर तक काफिला लेकर जाने वाले व्यापारियों, प्रधान शिल्पियों और साधारण शिल्पियों, सभी की अलग–अलग श्रेणियां थी। वराहपुराण कालीन भारत के आर्थिक विकास में विभिन्न उद्योग–धन्धों का भी विशिष्ट स्थान था, जिनका विकास साधारणतया नगरों से सम्बन्धित था। नागरिक जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन की व्यवस्था नगरों में ही की गई थी। वराह पुराण में वर्णित तथ्यों के आलोक में यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि तत्कालीन नागरिक जीवन पूर्णतया विकसित था। नगरों में बड़े–बड़े भवनों का निर्माण किया जाता था, जिन्हें हर्म्य, प्रहर्म्य, सद्म, प्रसद्म, दीर्घ प्रसद्म आदि नामों से वैदिक साहित्य में सम्बोधित किया गया है। नगरों में पुर (किले) भी रहा करते थे। ऋग्वेद में सरस्वती नदी को एक लोहे का किला कहा गया है, जिसका उपयोग पणियों के विरुद्ध युद्ध के अवसर पर किया गया था। वराह पुराण में भी अनेक पुरों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न उद्योग–धन्धों को उन्नत किया गया था और तत्कालीन समाज के विभिन्न लोगों की आजीविका उससे सम्बंधित थी।

**International Journal of Research in Social Sciences**
Vol. 8 Issue 3, March - 2018
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

शिल्पकारी प्राचीन युग से ही महत्वपूर्ण जीविका के साधन थे। वराह पुराण में रेशमी वस्त्र, श्वेत–वस्त्र, सूती वस्त्र, आदि के उल्लेख से सूत काटने की परम्परा अक्षुण्ण रूप से विद्यमान प्रतीत होता है। व्यापार में सोने, चाँदी, ताँबे, लोहे आदि से बने विभिन्न सामानों का परस्पर व्यापार जोरों पर था। वराह पुराण में इन धातुओं से बनी निम्नलिखित सामानों की सूची हमें मिलती है – रत्न–गर्भ सोने की मूर्ति, लोहे की प्रतिमा, ताँबा, काँसा, पीतल, सीसा की प्रतिमा, पत्थर की प्रतिमा, गुड़ धेनु बनाने में काँसे की दोहिनी, मुख एवं सींग सोने की, दाँत मणिमुक्ता की, रत्न की ग्रीवा, दोनों सींग अगुरु के काष्ट की, पीठ ताम्र की, काँसे का पात्र, कपास का पूँछ, ईख का पैर, चाँदी का खुर, रंगीन धागों का कम्बल, सोने की पृथ्वी की मूर्ति, कंगण, सुवर्ण का कर्णाभूषण, चाँदी की बनी पृथ्वी की मूर्ति तथा छाता, जूता, पादुका आदि। इसके अतिरिक्त रथ एवं खेती के लिए कुदाल तथा काष्ठ आदि बनाने के लिए विभिन्न धातुओं को गलाने, आभुषण बनाने, हथियार बनाने एवं ऐसे अन्य कितने ही उद्योग–धन्धों का अप्रत्यक्ष उल्लेख हमें प्राप्त होता है। युद्ध के रथ, तलवार आदि अस्त्र–शस्त्र, यातायात के लिए गाड़ी व जहाज आदि बनाने सम्बंधित बहुत सी उपमाओं के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में बढई, लोहार आदि का उद्योग–धन्धा भी बहुत विकसित रूप में विद्यमान था। वह लकड़ी का सभी प्रकार का काम करता था तथा कलापूर्ण कार्य के सम्पादन में भी वह सिद्धहस्त था। वराह पुराण में लकड़ी की प्रतिमा, मृण्मयी प्रतिमा, जलयान आदि के उल्लेख से उस युग की कलाकारी का स्पष्ट आभास होता है। ऋग्वेद में भी ऐसे कलापूर्ण कार्य के सम्पादन का उल्लेख हमें प्राप्त है। धातुओं का काम करने वाले भट्टी में कच्ची धातुओं को गलाकर उनसे बहुत सी आवश्यक वस्तुओं का निर्माण करते थे। घरेलु आवश्यकताओं के बर्तन आदि भी इसी का काम था। 'अयस्' धातु के ये बर्तन पाये जाते थे। यद्यपि 'अयस्' धातु के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य का अभाव है। इसको सम्भतः ताँबे, काँसे, या लोहे से सम्बंधित किया जा सकता है। धातु के बर्तनों के अतिरिक्त लकड़ी एवं मिट्टी के बर्तन भी बनाये जाते थे, जिनका उपयोग भोजनादि के लिए किया जाता था। इस प्रकार व्यापार और वाणिज्य के प्रचलन से तत्कालीन सभ्यता एवं संस्कृति की विकसित आर्थिक व्यवस्था का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

**आर्थिक चिंतन :–** भारतीय परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय एवं त्रिवर्ग के अन्तर्गत ही अर्थ की भी गणना की गई है। अर्थ का सम्बन्ध जीवन–यापन करने में सहायक भौतिक उपादानों से है। अधिकांश लोगों की भारतीय संस्कृति के प्रति यह धारणा रहती है कि भारतीय संस्कृति में परलोक एवं मोक्ष को ही प्रमुखता प्रदान की गई है। इह लोक वहाँ नितान्त उपेक्षित है, किन्तु वास्तव में उन लोगों की यह धारना निर्मूल है। भारतीय संस्कृति में इह लोक को भी उतना ही महत्व दिया गया है, जितना परलोक को। धर्म की आधार भूमि इह लोक ही है, परलोक नहीं। वर्णाश्रम धर्म का सम्बन्ध भी इह लोक से ही है, परलोक से नहीं और इसी भाँति त्रिवर्ग का सम्बन्ध भी मनुष्य के ऐहिक जीवन से ही है। इसीलिए भारतीय ऋषियों एवं महर्षियों ने तो इस लोक को तो क्या, स्वर्गादि तक को मानव जीवन का लक्ष्य नहीं माना। यद्यपि भारतीय संस्कृति में मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति ही है, किन्तु त्रिवर्ग भी इस संस्कृति में उपेक्षित नहीं। अर्थ एवं काम का महत्व भी इस संस्कृति में न्यून न रहा। धर्म की विशिष्टता ने इस देश के सभी पक्षों को सन्तुलित रखा। अर्थ एवं काम को स्वीकार किया गया। यदि ऐसा होता

**International Journal of Research in Social Sciences**
Vol. 8 Issue 3, March - 2018
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

तो भारतीय जीवन का सर्वाङ्गीण विकास कदापि सम्भव नहीं हो सकता था। भारत सम्भवतः अर्थ या काम का दास ही बनकर रह जाता, किन्तु धर्म के नियंत्रण के कारण मनुष्य इसका दास न होकर, इसका स्वामी रहा।

इस प्रकार भारतीय परम्परा के अनुसार अर्थ के प्रति अनासक्ति की भावना विहित है। यह हमारे लिए एक न्यूनतम आसक्ति की प्रवृति है। आज के प्रगतिशील सामाजवादी एवं साम्यवादी विश्व में हम सम्पत्ति के केन्द्रीकरण के विरोध में कृतसंकल्प हैं। धन के केन्द्रीकरण के लिए पूँजीवाद के विरोध में सामाजवादी एवं साम्यवादी चेतना के उदीयमान प्रयत्न विश्व में प्रायः सभी प्रगतिशील राष्टों में छा रहे हैं। अर्थ व्यक्ति की सम्पत्ति है, अथवा समाज की या राष्ट्र की? इनमें नवीन विचारधाराएँ स्म्पत्ति पर व्यक्ति के स्वत्व को स्वीकार नहीं करती है। नवीन प्रगतिशील एवं विकासवादी विचारधारा के अनुसार अर्थ पर राष्ट्र का अथवा समाज का स्वत्व ही स्वीकृत है। आज के विश्व के सभी राष्ट्रों में हो रहे ये आर्थिक आन्दोलन व्यक्ति में सामाजिक स्वत्व की प्रेरणा का संचार किये बिना बलात् उस पर आरोपित कर रहे है। यही कारण है कि किसी भी साम्यवादी एवं समाजवादी देश की जनता पूर्णरूपेण सन्तुष्ट नहीं। इसका कारण यह है कि वे व्यक्ति में उस प्रेरणा को जागृत करने में सर्वथा असमर्थ रहे। अनासक्ति की बात किये बिना, केवल स्वत्व त्याग की अथवा व्यक्ति के स्वत्व हरण की ही प्रक्रिया वहाँ दृष्टिगोचर होती है। एक ओर जहाँ व्यक्ति के अर्थ के स्वत्व के त्याग की बात है, वहीं समष्टि का उतना ही लगाव भी है। अतः इस विरोधाभास में संतोष की भावना कैसे आ सकती है? ये जीवन की एकांगी और संकीर्ण विचारधाराएँ हैं। मनुष्य केवल रोटी से ही नहीं जी सकता है, किन्तु वह रोटी के बिना भी नहीं जी सकता है और आज की इन प्रगतिवादी विचारधाराओं ने केवल इस वाक्य के उत्तरार्द्ध को ही लक्ष्य के रूप में ग्रहण किया है। इस दिशा में भारतीय विचारधारा ने जो सुन्दर एवं प्रांजल समन्वय एवं सामंजस्य प्रस्तुत किया है, वह आज भी अनुकरणीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. वराह पुराण।
2. कृष्ण मोहन श्रीमाली वैदिक साहित्य में प्रतिबिम्बत भारत–प्राचीन भारत का इतिहास।
3. अमरकोश।
4. बसु, इन्डो आर्यन पॉलिटी।
5. बन्द्योपाध्याय, इकनोमिक लाइफ एण्ड प्रोग्रस इन एंशियंट इंडिया।
6. रघुवंशम्
7. मैटी–इकनोमिक लाइफ।
8. ओमप्रकाश – फूड एंड ड्रिंक्स इन एंशियंट इण्डिया।
9. बोस, सोशियल एण्ड रूरल इकोनमी आफ नार्दन इण्डिया।

10. कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम।
11. वैदिक एज, प्रकाशक – भारतीय विद्या भवन।
12. कारपोरेट लाइफ इन एन्शियेन्ट इण्डिया, डॉ. रमेश चन्द्र मजूमदार।
13. वैदिक साहित्य और संस्कृति, वलदेव उपाध्याय।
14. पतंजलि कालीन भारत, डा. प्रभुदयाल अग्निहोत्री।
15. गुप्तकालीन संस्कृति का इतिहास, भगवत शरण उपाध्याय।
16. प्राचीन भारतीय वेश–भूषा, डा. मोतीचन्द।
17. के. एच. पोटर, प्रीपोजिसन्स ऑफ इन्डियाज फिलोसफी।
18. अर्थशास्त्र, कौटिल्य।
19. मनुस्मृति।
20. बृहस्पति सूत्र।